* श्रीपरमात्मने नमः *

श्रीप्रेमभक्ति प्रकाश ।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

सं० १९७९

ॐ

श्री परमात्मने नमः

अथ श्री प्रेमभक्ति प्रकाश ।

परमात्माकी शरणमें प्राप्त हुए पुरुषका मन, परमात्मासे प्रार्थना करता है:—

हे प्रभो! हे विश्वम्भर! हे दीनदयालो! हे कृपा-सिन्धो! हे अन्तर्यामिन्! हे पतितपावन! हे सर्वशक्तिमान्! हे दीनबन्धो! हे नारायण! हे हरे! दया करिए, दया करिए, हे अन्तर्यामिन् आपका नाम संसारमें दयासिन्धु और सर्वशक्तिमान् विख्यात है, इसलिये दया करना आप-का काम है।

हे प्रभो! यदि आपका नाम पतितपावन है, तो एकबार आकर दर्शन दीजिए। मैं आपको बारम्बार प्रणाम करके विनय करता हूँ, हे प्रभो! दर्शन देकर कृतार्थ करिए। हे प्रभो! आपके विना इस संसारमें मेरा और कोई भी नहीं है, एकबार दर्शन दीजिए, दर्शन दीजिए, विशेष न तरसाइए। आपका नाम विश्वम्भर है, फिर मेरी आशाको क्यों नहीं पूर्ण करते हैं। हे करुणामय! हे दयासागर! दया करिए। आप दयाके समुद्र हैं, इसलिये किंचित् दया करनेसे आप दयासागरमें कुछ दयाकी त्रुटि नहीं हो जायगी। आपकी किंचित् दयासे सम्पूर्ण संसारका उद्धार

हो सकता है, फिर एक तुच्छ जीवका उद्धार करना आपके लिये कौन बडी बात है । हे प्रभो ! यदि आप मेरे कर्तव्य को देखें तब तो इस संसारसे मेरा निस्तार होनेका कोई उपाय ही नहीं है । इसलिये आप अपने पतित-पावन नामकी ओर देख कर इस तुच्छ जीवको दर्शन दीजिए । मैं न तो कुछ भक्ति जानता हूँ, न योग जानता हूँ तथा न कोई क्रिया ही जानता हूँ, जो कि, मेरे कर्तव्यसे आपका दर्शन हो सके । आप अन्तर्यामी होकर यदि दयासिन्धु नहीं होते तो आपको संसारमें कोई दयासिन्धु नहीं कहता, यदि आप दयासागर होकर भी अन्तरकी पीड़ाको न पहचानते तो आपको कोई अन्तर्यामी नहीं कहता । दोनों गुणोंसे युक्त होकर भी यदि आप सामर्थ्यवान् न होते तो आपको कोई सर्व-शक्तिमान् और सर्व-सामर्थ्यवान् नहीं कहता । यदि आप केवल भक्तवत्सल ही होते, तो आपको कोई पतित-पावन नहीं कहता । हे प्रभो ! हे दयासिन्धो ! एकबार दया करके दर्शन दीजिए ॥ १ ॥

जीवात्मा अपने मनसे कहता है:—

रे दुष्ट मन ! कपट भरी प्रार्थना करनेसे क्या अन्तर्यामी भगवान् प्रसन्न हो सकते हैं ? क्या वे नहीं जानते कि ये सब तेरी प्रार्थनाएं निष्काम नहीं हैं ? एवं तेरे हृदयमें श्रद्धा, विश्वास और प्रेम कुछ भी नहीं है ? यदि तेरेको यह विश्वास है कि, भगवान् अन्तर्यामी हैं, तो फिर किस-

लिये प्रार्थना करता है ? बिना प्रेमके मिथ्या प्रार्थना करनेसे भगवान् कभी नहीं सुनते, और यदि प्रेम है, तो फिर कहनेसे प्रयोजन ही क्या है ? क्योंकि भगवान्ने तो स्वयं ही श्रीगीताजीमें कहा है किः–

श्लो०–ये यथा मां प्रपद्यन्ते
तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥ (गी. अं. ४ श्लो. ११)

जो मेरेको जैसे भजते हैं, मैं भी उनको वैसे ही भजताहूं ।

तथा—

ये भजन्ति तु मां भक्त्या
मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ (गी. अ. ९ श्लो. २९)

जो (भक्त) मेरेको भक्तिसे भजते हैं, वे मेरेमें हैं और मैं भी उनमें (प्रत्यक्ष प्रगट) हूँ । *

रे मन ! हरि दयासिन्धु होकर भी यदि दया न करें, तो भी कुछ चिन्ता नहीं, अपनेको तो अपना कर्तव्य कार्य करते ही रहना चाहिए । हरि प्रेमी हैं, वे प्रेमको पहचानते हैं, प्रेमके विषयको प्रेमी ही जानता है, वे अन्तर्यामी भगवान् क्या तेरे शुष्क प्रेमसे दर्शन दे सकते हैं ?

* जैसे सूक्ष्मरूपसे सब जगह व्याप्त हुआ भी अग्नि साधनों द्वारा प्रगट करनेसें ही प्रत्यक्ष होता हैं वैसे ही सब जगह स्थित हुआ भी परमेश्वर भक्तिसें भजनेवालेके ही अन्तःकरणमें प्रत्यक्षरूपसे प्रगट होता है ।

जब विशुद्ध प्रेम और श्रद्धा, विश्वास-रूपी डोरी तय्यार हो जायगी, तो उस डोरी द्वारा बंधे हुए हरि आपही आप चले आवेंगे। रे मूर्ख मन ! क्या मिथ्या प्रार्थनासे काम चल सकता है ? क्योंकि हरि अन्तर्यामी हैं । रे मन ! तेरेको नमस्कार है, तेरा काम संसारमें चक्कर लगानेका है, सो जहाँ तेरी इच्छा हो वहाँ जा। तेरे ही सङ्गके कारण मैं इस असार संसारमें अनेक दिन फिरता रहा, अब हरिके चरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करनेसे तेरा सम्पूर्ण कपट जाना गया। तूं मेरे लिये कपट भाव और अति दीन वचनोंसे भगवान्से प्रार्थना करता है, परन्तु तूं नहीं जानता कि, हरि अन्तर्यामी हैं। श्रीयोगवाशिष्ठमें ठीक ही लिखा है कि, मनके अमन हुए बिना, अर्थात् मनका नाश हुए बिना, भगवान्की प्राप्ति नहीं होती। वासनाका क्षय, मनका नाश और परमेश्वरकी प्राप्ति यह तीनों एकही कालमें होते हैं। इसलिये तेरेसे विनय करता हूँ कि, तूं यहाँसे अपने माजने सहित चला जा, अब यह पक्षी तेरी मायारूपी फाँसीमें नहीं फँस सकता, क्योंकि इसने हरिके चरणोंका आश्रय लिया है। क्या तूं अपनी दुर्दशा कराके ही जायगा ? अहो ! कहाँ वह माया ? कहाँ काम क्रोधादि शत्रुगण ? अब तो तेरी सम्पूर्ण सेनाका क्षय होता जाता है, इसलिये अपना प्रभाव पड़नेकी आशाको त्यागकर जहाँ इच्छा हो चला जा ॥२॥

मन फिर परमात्मासे प्रार्थना करता है:-

प्रभो! प्रभो! दया करिए, हे नाथ! मैं आपके शरण हूँ। हे शरणागत प्रतिपालक! शरण आएकी लज्जा राखिए। हे प्रभो रक्षा करिए, रक्षा करिए, एकबार आकर दर्शन दीजिए। आपके विना इस संसारमें मेरे लिये कोई भी आधार नहीं है, अतएव आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ, प्रणाम करता हूँ। विलम्ब न करिए, शीघ्र आकर दर्शन दीजिए। हे प्रभो! हे दयासिन्धो! एकबार आकर दासकी सुध लीजिए।

आपके न आनेसे प्राणोंका आधार कोई भी नहीं दीखता। हे प्रभो! दया करिए, दया करिए, मैं आपके शरण हूँ, एकबार मेरी ओर दया दृष्टिसे देखिए। हे प्रभो! हे दीनबन्धो! हे दीनदयालो! विशेष न तरसाइए, दया करिए। मेरी दुष्टताकी ओर न देखकर अपने पतित-पावन स्वभावका प्रकाश करिए ॥३॥

जीवात्मा अपने मनसे फिर कहता है:-

रे मन! सावधान! सावधान! किसलिये व्यर्थ प्रलाप करता है? वे श्रीसच्चिदानन्दघन हरि झूठी विनती नहीं चाहते। अब तेरा कपट यहाँ नहीं चलेगा, तूं मेरे लिये क्यों हरिसे कपट भरी प्रार्थना करता है! ऐसी प्रार्थना मैं नहीं चाहता, तेरी जहाँ इच्छा हो वहाँ चला जा।

यदि हरि अन्तर्यामी हैं, तो प्रार्थना करनेकी क्या आव-

श्यकता है ? यदि वे प्रेमी हैं, तो बुलानेकी क्या आवश्यकता है ? यदि वे विश्वम्भर हैं, तो माँगनेकी क्या आवश्यकता है ? तेरेको नमस्कार है, तूं यहाँसे चला जा चला जा॥४॥

जीवात्मा अपनी बुद्धि और इन्द्रियोंसे कहता है:—

हे इन्द्रियो ! तुमको नमस्कार है, तुम भी जाओ,जहाँ वासना होती है, वहाँ तुम्हारा टिकाव होता है । मैंने हरिके चरणकमलोंका आश्रय लिया है, इसलिये अब तुम्हारा दाव नहीं पड़ेगा । हे बुद्धे ! तेरेको भी नमस्कार है, पहिले तेरा ज्ञान कहाँ गया था जबकि तूं मेरेको संसारमें डूबनेके लिये शिक्षा दिया करती थी ? क्या वह शिक्षा अब लग सकती है ? ॥५॥

जीवात्मा परमात्मासे कहता है:—

हे प्रभो ! आप अन्तर्यामी हैं, इसलिये मैं नहीं कहता कि, आप आकर दर्शन दीजिए, क्योंकि यदि मेरा पूर्ण प्रेम होता तो क्या आप ठहर सकते ? क्या वैकुण्ठमें लक्ष्मी भी आपको अटका सकती ? यदि मेरी आपमें पूर्ण श्रद्धा होती तो क्या आप विलम्ब करते ? क्या वह प्रेम और विश्वास आपको छोड़ सकता ? अहो ! मैं व्यर्थ ही संसारमें निष्कामी और निर्वासनिक बना हुआ हूँ और व्यर्थ ही अपनेको आपके शरणागत मानता हूँ । परन्तु कोई चिन्ता नहीं, जो कुछ आकर प्राप्त हो, उसीमें मुझे प्रसन्न रहना चाहिए । क्योंकि ऐसे ही आपने श्रीगीताजीमें कहा है ।

*इसलिये आपके चरणकमलोंकी प्रेमभक्तिमें मग्न रहते हुए यदि मेरेको नरक भी प्राप्त हो तो वह भी स्वर्गसे बढ़कर है। ऐसी दशामें मेरेको क्या चिन्ता है ? जब मेरा आपमें प्रेम होगा, तो क्या आपका नहीं होगा ? जब मैं आपके दर्शन बिना नहीं ठहर सकूँगा, उस समय क्या आप ठहर सकेंगे ? आपने तो स्वयं श्रीगीताजीमें कहा है किः—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥

जो मेरेको जैसे भजते हैं मैं भी उनको वैसे ही भजता हूँ। अतएव मैं नहीं कहता कि, आप आकर दर्शन दीजिए। और आपको भी क्या परवाह है, परन्तु कोई चिन्ता नहीं, आप जैसा उचित समझें, वैसा ही करें, आप जो कुछ करें, उसीमें मेरेको आनन्द मानना चाहिए ॥६॥

जीवात्मा ज्ञान-नेत्रों द्वारा परमेश्वरका ध्यान करता हुआ आनन्दमें विह्वल होकर कहता हैः—

अहो ! अहो ! आनन्द ! आनन्द ! प्रभो ! प्रभो ! क्या आप पधारें ? धन्यभाग्य ! धन्यभाग्य ! आज मैं पतितभी आपके चरणकमलोंके प्रभावसे कृतार्थ हुआ। क्यों न हो आपने स्वयं श्रीगीताजीमें कहा है किः—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यःसम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

* यदृच्छालाभसन्तुष्टः (गी० अ० ४ श्लो० २२)
सन्तुष्टोयेनकेनचित् (गी० अ० १२ श्लो० १९)

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तःप्रणश्यति ॥

गीता अ० ९ श्लो० ३०-३१

यदि (कोई) अतिशय दुराचारी भी अनन्य भावसे मेरा भक्त हुआ मेरेको (निरन्तर) भजता है, वह साधुही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है।

इसलिये वहः—शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है (और) सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है, हे अर्जुन तूं निश्चयपूर्वक सत्य जान कि, मेरा भक्त नष्ट नहीं होता ॥७॥

जीवात्मा परमात्माके आश्चर्यमय सगुणरूपको ध्यानमें देखता हुआ अपने मनही मनमें उनकी शोभा वर्णन करता है

अहो ! कैसे सुन्दर भगवान्‌के चरणारविन्द हैं, जो कि नीलमणिके ढेरकी भाँति चमकते हुए अनन्त सूर्योंके सदृश प्रकाशित हो रहे हैं। चमकीले नखोंसे युक्त कोमल कोमल अङ्गुलियें जिनपर रत्नजड़ित सुवर्णके नूपुर शोभायमान हैं। जैसे भगवान्‌के चरणकमल हैं, वैसेही गोड़े और जङ्घादि अङ्ग भी नीलमणिके ढेरकी भाँति पीताम्बरके भीतरसे चमक रहे हैं। अहो ! सुन्दर चार भुजायें कैसी शोभायमान हैं। ऊपरकी दोनों भुजाओंमें तो शंख और चक्र एवं नीचेकी दोनों भुजाओंमें गदा और पद्म विराजमान हैं। चारों भुजाओंमें केयूर और कड़े आदि सुन्दर

सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ।
सहारवक्षःस्थलकौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ॥

सुन्दर आभूषण सुशोभित हैं। अहो! भगवान्का वक्षः स्थल कैसा सुन्दर है कि, जिसके मध्यमें श्रीलक्ष्मीजीका और भृगुलताका चिन्ह विराजमान है तथा नीलकमलके सदृश वर्णवाली भगवान्की ग्रीवा भी कैसी सुन्दर है। जिसमें रत्नजड़ित हार और कौस्तुभमणि विराजमान हैं, एवं मोतियोंकी और वैजन्ति तथा सुवर्णकी और भाँति भाँतिके पुष्पोंकी मालाएं सुशोभित हैं। सुन्दर ठोढी, लाल ओष्ठ और अतिशय सुन्दर भगवान्की नासिका है, जिसके अग्र भागमें मोती विराजमान हैं। भगवान्के दोनों नेत्र कमल-पत्रके समान विशाल और नीलकमलके पुष्पकी भाँति खिले हुए हैं। कानोंमें रत्नजड़ित सुन्दर मकराकृत कुण्डल और ललाटपर श्रीधारी तिलक एवं शीसपर रत्नजड़ित किरीट (मुकुट) शोभायमान है। अहो! भगवान्का मुखा-रविन्द पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति गोल गोल कैसा मनोहर है। जिसके चारों ओर सूर्यके सदृश किरणें देदीप्यमान हैं, जिनके प्रकाशसे मुकुटादि सम्पूर्ण भूषणोंके रत्न चमक रहे हैं। अहो! आज मैं धन्य हूँ, धन्य हूँ, जो कि मन्द मन्द हँसते हुए आनन्दमूर्त्ति हरिभगवान्का दर्शन कर रहा हूँ ॥८॥

इस प्रकार आनन्दमें विह्वल हुआ जीवात्मा ध्यानमें अपने सन्मुख सवा हाथकी दूरीपर बारह वर्षकी सुकुमार अवस्थाके रूपमें भूमिसे सवा हाथ ऊँचे आकाशमें विराज-मान परमेश्वरको देखता हुआ उनकी मानसिक पूजा करता है

मानसिक पूजाकी विधि ।

ओं पादयोः पाद्यं समर्पयामि नारायणाय नमः

इस मन्त्रको बोलकर शुद्ध जलसे श्रीभगवान्‌के चरण-कमलोंको धोकर उस जलको अपने मस्तक पर धारण करना ॥१॥

ओं हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि नारायणाय नमः

इस मन्त्रको बोलकर श्रीहरिभगवान्‌के हस्त कमलोंपर पवित्र जल छोड़ना ॥२॥

ओं आचमनीयं समर्पयामि नारायणाय नमः

इस मन्त्रको बोलकर श्रीनारायणदेवको आचमन कराना ॥३॥

ओं गन्धं समर्पयामि नारायणाय नमः

इस मन्त्रको बोलकर श्रीहरिके ललाटपर रोली लगाना ॥४॥

ओं मुक्ताफलं समर्पयामि नारायणाय नमः

इस मन्त्रको बोलकर श्रीभगवान्‌के ललाटपर मोती लगाना ॥५॥

ओं पुष्पं समर्पयामि नारायणाय नमः

इस मन्त्रको बोलकर श्रीभगवान्‌के मस्तकपर और नासिकाके सामने आकाशमें पुष्प छोड़ना ॥६॥

ओं मालां समर्पयामि नारायणाय नमः ॥७॥

इस मन्त्रको बोलकर पुष्पोंकी माला श्रीहरिके गलेमें पहराना।

ओं धूपमाघ्रापयामि नारायणाय नमः॥८॥

इस मन्त्रको बोलकर श्रीभगवान्के सामने अग्निमें धूप छोड़ना ।

ओं दीपं दर्शयामि नारायणाय नमः ॥९॥

इस मन्त्रको बोलकर घृतका दीपक जलाकर श्रीविष्णु भगवान्के सामने रखना ।

ओं नैवेद्यं समर्पयामि नारायणाय नमः ॥१०॥

इस मन्त्रको बोलकर मिश्रीसे श्रीहरि भगवान्के भोग लगाना ।

ओं आचमनीयं समर्पयामि नारायणाय नमः॥

इस मन्त्रको बोलकर श्रीभगवान्को आचमन कराना ॥११॥

ओं ऋतुफलं समर्पयामि नारायणाय नमः ॥

इस मन्त्रको बोलकर ऋतुफल (केला आदि) से श्रीभगवान्के भोग लगाना ॥१२॥

ओं पुनराचमनीयं समर्पयामि नारायणाय नमः

इस मन्त्रको बोलकर श्रीभगवान्को फिर आचमन कराना ॥१३॥

ओं पूगीफलं सताम्बूलं
समर्पयामि नारायणाय नमः

इस मन्त्रको बोलकर सुपारी सहित नागरपान श्रीभगवान्के अर्पण करना ॥१४॥

ओं पुनराचमनीयं समर्पयामि नारायणाय नमः

इस मन्त्रको बोलकर पुनः श्रीहरिको आचमन कराना ॥१५॥

फिर सुवर्णके थालमें कपूरको प्रदीप्त करके श्रीनारायण देवकी आरती उतारना

ओं पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि नारायणाय नमः

इस मन्त्रको बोलकर सुन्दर सुन्दर पुष्पोंकी अञ्जलि भरकर श्रीहरि भगवान्के मस्तकपर छोड़ना ॥१६॥

फिर चार प्रदक्षिणा करके श्रीनारायणदेवको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करना ।

उक्त प्रकारसे श्रीहरि भगवान्की मानसिक पूजा करनेके पश्चात् उनको अपने हृदय-आकाशमें शयन कराके जीवात्मा अपने मनही मनमें श्रीभगवान्के स्वरूप और गुणोंका वर्णन करता हुआ बारम्बार सिरसे प्रणाम करता है:-

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

जिनकी आकृति अतिशय शान्त है, जो शेष नागकी शय्यापर शयन किये हुए हैं, जिनकी नाभिमें कमल है, जो देवताओंके भी ईश्वर और सम्पूर्ण जगतके आधार हैं, जो आकाशके सदृश सर्वत्र व्याप्त हैं, नीलमेघके समान जिनका वर्ण है, अतिशय सुन्दर जिनके सम्पूर्ण अङ्ग हैं, जो योगियों द्वारा ध्यान करके प्राप्त किये जाते हैं, जो सम्पूर्ण
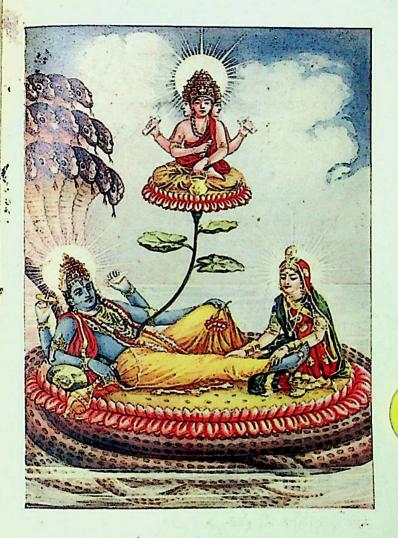
शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

लोकोंके स्वामी हैं, जो जन्म मरणरूप भयका नाश करनेवाले हैं, ऐसे श्रीलक्ष्मीपति कमल-नेत्र विष्णु भगवान्‌को मैं सिरसे प्रणाम करता हूं।

असंख्य सूर्योंके समान जिनका प्रकाश है, अनन्त चन्द्रमाओंके समान जिनकी शीतलता है, करोड़ों अग्नियोंके समान जिनका तेज है, असंख्य मरुद्‌गणोंके समान जिनका पराक्रम है, अनन्त इन्द्रोंके समान जिनका ऐश्वर्य है, करोड़ों कामदेवोंके समान जिनकी सुन्दरता है, असंख्य पृथ्वियोंके समान जिनमें क्षमा है, करोड़ों समुद्रोंके समान जो गम्भीर हैं, जिनकी किसीप्रकार भी कोई उपमा नहीं कर सकता, वेद और शास्त्रोंने भी जिनके स्वरूपकी केवल मात्र कल्पना ही की है, पार किसीने भी नहीं पाया ऐसे अनुपमेय श्रीहरि भगवान्‌को मेरा बारम्बार नमस्कार है।

जो सच्चिदानन्दमय श्रीविष्णु भगवान् मन्द मन्द मुसकुरा रहे हैं, जिनके सारे अङ्गोंपर रोम रोममें पसीनेकी बून्दें चमकती हुई शोभा देती हैं, ऐसे पतित-पावन श्रीहरि भगवान्‌को मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥१०॥

जीवात्मा मनही मनमें श्रीहरि भगवान्‌को पंखेसे हवा करता हुआ एवं उनके चरणोंकी सेवा करता हुआ, उनकी स्तुति करता है:—

अहो ! हे प्रभो ! आपही ब्रह्मा हैं, आपही विष्णु हैं, आपही महेश हैं, आपही सूर्य हैं, आपही चन्द्रमा और तारागण हैं, आपही भूर्भुवःस्वः तीनों लोक हैं, तथा सातों द्वीप और चौदह भुवन आदि जो कुछ भी है, सब आपहीका स्वरूप है, आपही विराट् स्वरूप हैं, आपही हिरण्यगर्भ हैं, आपही चतुर्भुज हैं और मायातीत शुद्ध ब्रह्म भी आपही हैं,

आपहीने अपने अनेक रूप धारण किये हैं, इसलिये सम्पूर्ण संसार आपहीका स्वरूप है, तथा द्रष्टा दृश्य दर्शन जो कुछ भी है, सो सब आपही हैं *। अतएवः—

नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते ।
अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभाविष्णवे ॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्राणियोंके आदिभूत पृथ्वीको धारण करनेवाले और युग युगमें प्रकट होनेवाले अनन्त रूपधारी (आप) विष्णु भगवान्के लिये नमस्कार है

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

अर्थ—आपही माता और आपही पिता हैं, आपही बन्धु और आपही मित्र हैं, आपही विद्या और आपही धन हैं, हे देवोंके देव ! आपही मेरे सर्वस्व हैं ॥११॥

उक्त प्रकारसे परमात्माकी प्रेम-भक्तिमें लगे हुए पुरुषका जब परमात्मामें अतिशय प्रेम हो जाता है, उस

---

* "एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः" (विष्णु सहस्र नाम०) अर्थ—पृथक् पृथक् सम्पूर्ण भूतोंको (उत्पन्न करनेवाला) महान् भूत एकही विष्णु अनेक रूपसे स्थित है। तथा "एकोहं बहु-स्याम" (इति श्रुतिः) अर्थ (सृष्टिके आदिमें भगवान्ने सङ्कल्प किया कि) मैं एकही बहुत रूपमें होऊँ ।

कालमें उसको अपने शरीरादिकी भी सुध नहीं रहती, जैसे सुन्दरदासजीने प्रेमभक्तिका लक्षण करते हुए कहा हैः—

इन्दव छन्द ।

प्रेम लग्यो परमेश्वरसों तब, भूलि गयो सिगरो घरबारा ।
ज्यों उनमत्त फिरै जित ही तित, नेक रही न शरीर सँभारा ॥
श्वास उसास उठे सब रोम, चलै दृग नीर अखण्डित धारा ।
सुन्दर कौन करै नवधा विधि, छाकि पर्यौ रस पी मतवारा ॥

नाराच छन्द ।

न लाज तीन लोककी, न वेदको कह्यो करे ।
न शङ्क भूत प्रेतकी, न देव यक्षते डरे ॥
सुने न कान औरकी, द्रसै न और इच्छना ।
कहै न मुख और बात, भक्ति प्रेम-लच्छना ॥

बीजुमाला छन्द ।

प्रेम अधीनों छाक्यो डोलै, क्योंकी क्योंही बाणी बोलै ।
जैसे गोपी भूली देहा, तैसो चाहे जासों नेहा ॥

मनहर छन्द ।

नीर बिनु मीन दुःखी, क्षीर बिनु शिशु जैसे,
पीरकी ओषधि बिनु, कैसे रह्यो जात है ।
चातक ज्यों स्वाति बूँद, चन्दको चकोर जैसे,
चन्दनकी चाह करि, सर्प अकुलात है ।
निर्धन ज्यों धन चाहे, कामिनीको कन्त चाहे,
ऐसी जाके चाह ताहि, कछु न सुहात है ।
प्रेमको प्रवाह ऐसो, प्रेम तहाँ नेम कैसो,
सुन्दर कहत यह, प्रेमहीकी बात है ॥

छप्पय छन्द ।

कबहुँक हँसि उठि नृत्य, करै रोवन फिर लागै ।

कबहुँक गदगद–कण्ठ, शब्द निकसे नहिं आगे ॥
कबहुँक हृदय उमङ्ग, बहुत ऊँचे स्वर गावे।
कबहुँक ह्वै मुख मौन, गगन ऐसे रहि जावे॥
चित्त वित्त हरिसों लग्यो, सावधान कैसे रहै।
यह प्रेम लक्षणा भक्ति है, शिष्य सुनहु सुन्दर कहै ॥

सगुण भगवान्‌के अन्तर्द्धान हो जानेपर जीवात्मा शुद्ध सच्चिदानन्द घन सर्वव्यापी परब्रह्म परमात्माके स्वरूपमें मग्न हुआ कहता है:—

अहो ! आनन्द ! आनन्द ! अति आनन्द ! सर्वत्र एक वासुदेव ही वासुदेव व्याप्त हैं *। अहो ! सर्वत्र एक आनन्द ही आनन्द परिपूर्ण है।

कहाँ काम, कहाँ क्रोध, कहाँ लोभ, कहाँ मोह, कहाँ मद, कहाँ मत्सरता, कहाँ मान, कहाँ क्षोभ, कहाँ माया, कहाँ मन, कहाँ बुद्धि, कहाँ इन्द्रियां, सर्वत्र एक सच्चिदानन्द ही सच्चिदानन्द व्याप्त हैं। अहो ! अहो ! सर्वत्र एक सत्यरूप, चेतनरूप, आनन्दरूप, घनरूप, पूर्णरूप, ज्ञानस्वरूप, कूटस्थ, अक्षर, अव्यक्त, अचिन्त्य, सनातन, परब्रह्म, परम अक्षर, परिपूर्ण, अनिर्देश्य, नित्य, सर्वगत, अचल, ध्रुव, अगोचर, मायातीत, अग्राह्य, आनन्द, परमानन्द, महानन्द, आनन्द ही आनन्द, आनन्द ही आनन्द परिपूर्ण है आनन्दसे भिन्न कुछ भी नहीं है ॥ १३ ॥ इति शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

---

*बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवःसर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ गी० अ० ७ श्लो० १९

अर्थ—(जो) बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त हुआ ज्ञानी सब कुछ वासुदेवही हैं, इस प्रकार मेरेको भजता है, वह महात्मा अति दुर्लभ है।

आनन्दकी बहार है
आनन्दकी बहार है।
सब लहरें उठतीं आनन्दकी
आनन्दकी बहार है॥